शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 फरवरी 2019
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

रोग विचार की पृष्ठभूमि

प्रदीप कुमार मिश्र (शोधार्थी)
प्रो. मिथिला प्रसाद त्रिपाठी (निर्देशक)
महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्वविद्यालय
उज्जैन, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

व्याधेरनिष्टसंस्पर्शाच्छ्रमादिष्टविवर्जनात् ।
दुःख चतुर्भिः शरीरं कारणैः सम्प्रवर्त्तते।। (महाभारत, आरण्यपर्व, अ. 2 श्लोक 22)

रोग का प्रकोप, शरीर में अनिष्ट अवांछित संक्रमण, अत्यधिक परिश्रम एवं प्रकृति के विरुद्ध आचार - इन चार कारणों से शारीरिक कष्ट का उदय होता है। किसी भी रोग के उदय में इन चार कारणों के योगदान को समझने के लिए उस रोग की पृष्ठभूमि को ठीक से समझना चाहिए। इस शोध पत्र में कुण्डलियों से रोगों की पहचान करने प्रविधि को विश्लेषित किया गया है।

प्रस्तावना

रोग विचार की पृष्ठभूमि जातक के कर्मों के आधार पर बन चुकी होती है। रोगों की पृष्ठभूमि को समझने के लिए यह जरूरी है कि हम रोगों के प्रकार को स्पष्ट करके आगे बढ़ें। भाव-राशि-ग्रह-दशा-नक्षत्र के सम्मिलित अध्ययन से रोगों के प्रकार का पता चलता है। रोगों के प्रकार का अर्थ है कि रोग साध्य और असाध्य हैं या संक्रमण और गैर संक्रमण वाले हैं या स्वाभाविक या दुर्घटना जनित हैं। इस बारे में अमरीकी डॉक्टर एच. एल कोरनेल ने लिखा है कि -

In my years as a physician, I have, by the use of Astrology, been able to very quickly locate the seat of the disease, the cause of the trouble, the time when the patient began to feel Uncomfortable , as based on the birth data of the patient, and this without even touching or examining the patient, and my intense desire to get this knowledge and wisdom before students and Healers in a classified form, is the reason for this Encyclopedia.. When once you have discovered the cause of the disease, and understand its philosophy and the relation of the patient to the great Scheme of Nature, the matter of treatment I leave to you, and according to the System and Methods you may be using.[1]

इसका संक्षिप्त अर्थ लें तो वे कहते हैं कि "ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान ने मेरे वर्षों के फिजिशियन की तरह से डॉक्टरी में रोगों के होने की जगह, कब होंगे और होने कारण को तुरंत जानने में मदद किया है। मेरी इच्छा है कि यह ज्ञान मैं अपने छात्रों तक पहुचाऊँ इसलिए यह इनसाक्लोपिडिया लिख रहा हूँ। जब आप रोग होने का कारण ढूंढ़ लेते हैं और दर्शन समझ लेतें हैं तथा रोगी का इस महान प्रकृति से सम्बन्ध

पता चल जाता है तो उसके इलाज के तरीके को मैं आप पर छोड़ता हूँ। यह आप पर निर्भर करता है कि आप कौन सा तरीका चुनते हैं। " रोगों की पृष्ठभूमि को ठीक से समझने के लिए इस शोधपत्र के निम्न उप शीर्षकों में विभाजित किया गया है।

कुण्डली से रोग विचार

जब हमारे सामने किसी जातक की कुण्डली आती है तो हम सबसे पहले उसके लग्न का अध्ययन करते हैं। इसमें हम लग्न की राशि, राशि का स्वामी, लग्न का अंश, लग्न के राशि स्वामी का अंश, लग्न स्वामी किस भाव में गया है ? लग्न पर किन ग्रहों की दृष्टि है ? इस आधार पर लग्न शुभता-अशुभता का पता चलता है। उदाहरण के लिए यदि लग्नेश शुभ ग्रह है, शुभ स्थान पर बैठा है और 10 से 20 अंश के बीच का है। लग्न पर शुभ ग्रहों की दृष्टि है। तो यह निश्चित हो जाता है कि जातक के पास पर्याप्त जीवन ऊर्जा है। इसके अलावा आयुर्दाय योगों से भी पता चल जाएगा कि जातक दीर्घायु, मध्यम आयु तथा अल्पायु है। यदि दीर्घायु होता तो सामान्यतः उसका जीवन शैली प्राकृतिक रहेगा और वह संतुलित जीवनयापन करेगा। जिससे उसको रोग होने की संभावना कम होगी और यदि रोग होंगे भी तो प्रबल जीवन ऊर्जा के कारण जल्दी ही ठीक हो जाऐंगे। यदि मध्यम आयु होगा तो जीवन के प्रारम्भ में या बीच में विकार को जन्म देनेवाले ग्रहों की दशाएँ आएँगी जिससे वह अपनी जीवन शैली को खराब कर लेगा। वह प्राकृतिक जीवन शैली से कृत्रिम जीवन शैली की तरफ मुड़ जाएगा। जिससे उसका आहार-विहार बिगड़ जाएगा और प्रभाव जीवन के अंतिम समय में दिखाई देगा। ज्यादातर इस तरह लोगों को नशे की आदत हो जाती है। वे कोई कसरत या शरीर व्यायाम नहीं करते हैं। जिससे शरीर में रोगों से संघर्ष करने की ऊर्जा घटती जाती है। एक समय आता है कि यह इतनी कम हो जाती है कि रोग इस पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिनकी नौकरी ऐसी होती है कि उसकी परिस्थितियों के कारण मध्यम आयु के योगों को फलित करने में सहायक जीवन शैली बन जाती है, जैसे रात्रि पाली में लगातार नौकरी करनेवाले लोग, लगातार 8-10 घण्टे तक बैठ कर काम करने वाले लोग। आजकल जो लोग कम्प्यूटर पर प्रोग्रामिंग या बहुत देर तक काम करते हैं ऐसे लोग जिनके काम में लगातार भयानक तनाव या टकराव होते हैं। इन सब स्थितियों की जानकारी उनकी कुण्डली से पता चल जाता है। यह पूरा जीवन ही कर्मों का भोग है, और कर्मो के भोग ही कुण्डलियों में दर्ज होते हैं। इनको लंबे समय तक चलनेवाले असाध्य रोग जैसे मधुमेह, मिर्गी, नपुंसकता आदि भी हो जाते हैं। तीसरे प्रकार के लोग वे लोग होते हैं जिनकी अल्पायु होती है। इनके जीवन में अचानक असाध्य रोग जैसे कर्क रोग, क्षय रोग, एड्स, लकवा आदि हो जाते हैं और जीवन लीला बहुत ही जल्दी सिमट जाती है। अन्यथा इनकी जीवन शैली इतनी बुरी हो जाती है कि वे अति नशा, अति तनाव और अति व्यसन के शिकार हो जाते हैं। जिसमें जीवन ऊर्जा का क्षय बहुत तेजी से हो जाता है। इस तरह के लोग सामान्यतः जन्म के समय या कुछ दिनों बाद ही दुःसाध्य रोगों से भी पीड़ित हो जाते हैं। इस तरह से आयु की गणना ज्योतिष के रोग अध्ययन का पहला पद होता है। इसके बाद दूसरे अध्ययन किए जाते हैं जिनमें विशेष रूप से षष्ठ भाव का अध्ययन किया जाता है। षष्ठ भाव के बारे में पाराशर ऋषि के यह छः श्लोक अपने आप में बहुत समृद्ध और सटीक हैं इसको केन्द्र में रखकर रोगों का फलित ठीक ढंग से कर सकते हैं।

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 फरवरी 2019
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अथ विप्र! फलं वक्ष्ये षष्ठभावसमुद्भवम् ।
देहे रोगव्रणाद्यं तत् श्रूयतामेकचेतसा।1।।
षष्ठाधिपः स्वगेहे वा देहे वाऽप्यष्टमें स्थितः।
तदा व्रणो भवेद्देहे षष्ठराशिसमाश्रिते।।2।।
एवं पित्रादिभावेशास्तत्तत्कारकसंयुताः।
व्रणाधिपयुताश्चापि षष्ठाष्टमयुता यदि।।3।।
तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम्।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भौमेनज्ञेन नाभिषु।4।।
गुरुणा नाशिकायां च भृगुणा नयने पदे।
शशिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत्।5।।
लग्नाधिपः कुजक्षेत्रे बुधभे यदि संस्थितः।
यत्र कुत्र स्थितो ज्ञेन वीक्षितो मुखरुक्प्रदः।।6।।[2]

इन श्लोकों में पाराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय जी ! अब मैं शारीरिक रोग, व्याधि, व्रण आदि के कारक षष्ठ भाव का फल कहता हूँ, एकाग्रचित होकर सुनो। षष्ठेश स्वगृह में या लग्न में या अष्टम भाव में स्थित हो तो जातक के शरीर में व्रण (घाव) होते हैं। षष्ठ भाव में जो राशि हो, उसका जो अंग हो, उस अंग में विशेष व्रण होते हैं। इसी प्रकार पिता आदि भावों के अधिपति षष्ठेश से युक्त होकर छठे या आठवें भाव में हो तो पिता आदि अपने सम्बन्धियों को व्रण कहना चाहिए। यदि सूर्य षष्ठ स्थान का अधिपति होकर छठे या आठवें में स्थित हो तो मस्तक में, चन्द्र से मुख में, भौम से कण्ठ में, बुध से नाभि में, गुरु से नासिका में शुक्र से नयन में, शनि से पैर में एवं राहु अथवा केतु से कुक्षि(पेट) में व्रण कहना चाहिए। लग्नेश भौम पहले या आठवें भाव अथवा बुध के क्षेत्र तीसरे या छठे में से किसी भाव में स्थित हो और बुध से दृष्ट हो तो जातक के मुँह में व्रण होते हैं। हमने अंगों और ग्रहों के सम्बन्ध के बारे में पिछले आध्याय में विस्तार से चर्चा किया है। जिसको यहाँ पर महर्षि पाराशर के श्लोकों ने प्रमाणित कर दिया। यानि रोग विचार में दूसरे क्रम पर हमें लग्न और षष्ठ भाव देखना चाहिए। सामान्यतः हर तरह के उद्देश्य के लिए कुण्डली के अवलोकन में सबसे पहले लग्न ही देखते हैं। रोग के सन्दर्भ में तो लग्न को देखना ही चाहिए। लग्न शारीरिक स्थिति को प्रदर्शित करता है। चूंकि लग्न सामान्यतः देखते ही हैं इसलिए हम उसके बारे में विशेष चर्चा न करके शोध विषय के केन्द्र वस्तु रोग के लिए यहाँ पर षष्ठ भाव की चर्चा कर रहे हैं। इन छः श्लोकों में पाराशर ऋषि ने भाव, अंग तथा ग्रहों के रोगों से संबन्ध को व्याख्यायित किया है। जिसको हम किसी भी उदाहरण की कुण्डली के साथ सत्यापित कर सकते हैं। इसके लिए जिस जातक की कुण्डली ले रहे हैं उसका जन्म 01 जनवरी 1968 को रात 21:40 बजे उ.प्र. के गोरखपुर में हुआ है।

उदाहरण कुण्डली -1

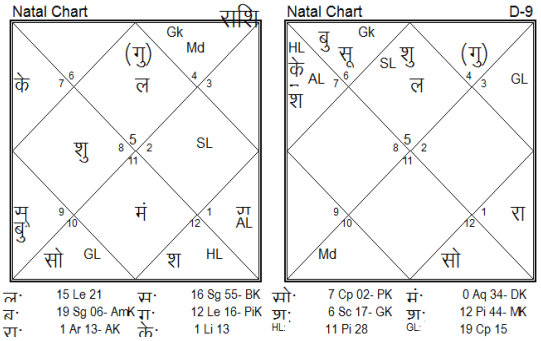

इस कुण्डली में षष्ठ भाव में मकर राशि है। काल पुरुष नक्षत्र पुरुष चक्र में देखने से पता चलता है कि मकर का अंग घुटना और इसका स्वामी शनि है जिसका अंग पैर है। यहाँ पर चंद्रमा ग्रह स्थित है यानि माता हुई। शनि षष्ठेश होकर अष्टम में बैठा है। इस जातक के घुटने में व्रण होते रहे हैं और बहुत बार चोटें लगीं हैं। शनि अष्टम में है जो दाहिने पैर और घुटने का प्रतिनिधित्व करता है। इस जातक के दाहिने पैर में दर्द और व्रण की शिकायत बनी रहती है। चंद्रमा के कारण इस जातक की माता जी की तीन बड़ी शल्य क्रिया हुई है। इस तरह से हम और भी कुण्डलियों पर सत्यापन कर सकते हैं।

रोग निर्णय के आवश्यक तत्त्व

यह आवश्यक एवं जटिल विषय है। इसमें मुख्यरूप से निम्नलिखित तथ्यों पर विचार किया गया है-

1 रोगोत्पति का समय

2 रोग की प्रकृति

3 रोग का प्रकोप एवं तीव्रता

4 रोग के उपचार

रोगोत्पति का समय

रोगोत्पति-समय ज्ञान के लिए बहुमान्य एवं स्वीकृत तरीका दशा और गोचर हैं। व्यावहारिकरुप से जातकों को सलाह देते समय यह अनुभव हुआ है कि विंशोत्तरी दशा में अंतर दशा का स्वामी महादशा के स्वामी पर बहुत प्रभाव डालता है। ग्रहों के योगों को कुण्डली में विभिन्न स्तरों पर देखना चाहिए। रोग के संयोग भी हर स्तर पर प्रामाणित होते हुए दिखाई देते हैं। जिनको षष्ठ, लग्न, अष्टम और द्वादशेश पर लगा कर हम रोगों के उत्पत्ति का समय निकाल सकते हैं। यदि लग्नेश बुध हो और पंचम आदि भाव में स्थित हो तथा पाप दृष्ट हो तो अपनी अन्तर्दशा के आरम्भ में ही रोग देता है।[3]

उदाहरण कुण्डली-2

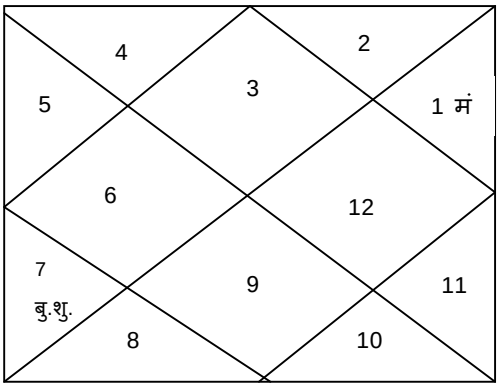

ग्रहों के इस योग को उदाहरण कुण्डली में प्रदर्शित किया गया है। चंद्र का पुत्र होने के कारण बुध भी तुरंत फल प्रदान करता है। जब एक नैसर्गिक पापी ग्रह की दशा हो और दूसरे पापी ग्रह का अंतर आ जाए और दोनो किसी तीसरे ग्रह पर दृष्टि या प्रभाव डाल रहे हों तो घटनाएं तृतीय ग्रह सम्बन्धित घटित होंगी। वह तृतीय ग्रह यदि लग्नाधिपति या अष्टमाधिपति हो तो फिर शरीर में रोग की उत्पत्ति होगी। उदाहरण की कुण्डली में यदि शनि की महादशा हो और मंगल की अंतर दशा या मंगल की महादशा में शनि की अन्तर दशा हो को बुध लग्ननेश के पीड़ित होने के कारण स्वास्थ्य की हानि होगी। ज्वर-

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 फरवरी 2019
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अस्थमा-बेहोशी इत्यादि रोग होंगे। रोग होने का समय समीकृत वर्ष में भी निर्धारित किए जाते हैं। होराशतककार में सभी ग्रहों के समीकृत वर्ष दिए गए हैं - बुध- 16 वर्ष, शुक्र -20, गुरु - 24 वर्ष, शनि- 28 वर्ष, मंगल - 18 वर्ष, चंद्र - 22 वर्ष, सूर्य - 26 वर्ष। यह समीकृत वर्ष न केवल भाग्य के वर्ष निर्धारित करने में उपयोगी हैं बल्कि उस ग्रह से प्रदत्त रोग किस आयु में होगा यह भी निर्धारित करते हैं। रोग का सम्बन्ध आधिकतर लग्न, चतुर्थ, षष्ठ तथा अष्टम भावों से रहता है। अतः इन भावों के स्वामीयों पर शुभ अथवा अशुभ दृष्टि के फलस्वरूप उपरोक्त समीकृत वर्षों में योग अथवा ऋण करके मुख्य रोगों के वर्ष निकाले जा सकते हैं।

उदाहरण कुण्डली -3[4]

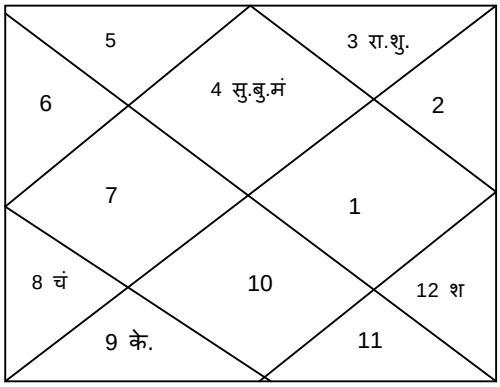

लग्नेश - चंद्र समीकृत वर्ष - 22

लग्न में ग्रह - सु.मं.(पापी) बु.(शुभ) अतः -यह पापी ग्रह लग्नेश के 22 वर्ष से पूर्व रोग देने की कोशिश करेगा।

सू.मं.बु. प्रति ग्रह 2 वर्ष पहले ही रोग देने का प्रयास करे। लेकिन पापी

ग्रह 1 शेष है इसलिए - (1X2 =2 वर्ष) अतः -2 वर्ष हुए।

लग्न शुभ मध्य में है इसलिए +2 वर्ष हुए।

लग्नेश चंद्र - स्थान बली है, राशि नीच एवं निर्बल है परन्तु पक्ष में बली है अतः +4 वर्ष हुए।

चंद्र पर गुरु के केन्द्रिय प्रभाव है अतः +4 वर्ष हुए।

गुरु - मं तथा शनि के बीच में हैं। अतः - 2 वर्ष हुए।

कुल वर्ष = 22-2+2+4+4-2 = 28 वर्ष

इस व्यक्ति को शुक्र की महा दशा में और शनि की अंतर दशा में 27 वर्ष की आयु में 7.5 माह के लिए टायफाइड हुआ।

इसी प्रकार से अन्य भावों का परीक्षण करके रोगों के होने का वर्ष निकाल सकते हैं। रोग होने के समय में व्यावहारिकरूप से 1-2 वर्ष का अंतर हो सकता है।

गोचर से भी रोग उत्पत्ति के समय का ज्ञान होता है। जब लग्नेश किसी भी तरह से षष्ठेश के प्रभाव में हो। गोचर के चन्द्र और सूर्य, लग्न और लग्नेश के सम्बन्ध बना रहे हों तो उसी दिन और माह में रोग होने की सम्भावना बहुत ज्यादा रहती है। रोग का समय दशा और गोचर दोनों के सम्मिलित अध्ययन से प्राप्त हो सकता है। रोग के समय चन्द्र का जो नक्षत्र होगा वह रोग की अवधि तय करेगा। जैसे अर्द्रा

नक्षत्र में होनेवाले रोग लम्बे समय के इलाज के बाद ठीक होते हैं। दुःसाध्य रोग देने में यह नक्षत्र सक्षम है।

रोग की प्रकृति

रोगों की प्रकृति को ठीक से समझने के लिए। ज्योतिषशास्त्र के विद्यार्थियों को शरीर विज्ञान का गहन अध्ययन करना चाहिए। जिससे यह पता चले कि अंगों की संरचना कैसी होती है और वह किस तरह से काम करते हैं। उसके आधार पर अंग से सम्बन्धित ग्रह और नक्षत्र को तय करना होगा। फिर गोचर, मूल कुण्डली, दशा आदि के आधार उनके शुभाशुभ होने का निर्णय करना होगा। फिर अंग में होनेवाले रोगों की प्रकृति को समझना होगा। इन प्राप्त परिणामों को संग्रहित करके रोगों के कारक ग्रहों और नक्षत्रों की प्रवृत्ति से साम्यता और तीव्रता का आकलन करके रोग के निदान हेतु प्रयास करना होगा।

वस्तुतः रोगों की प्रकृति को जानने का उद्देश्य रोग के निदान के लिए बहुत जरूरी है। जो हमारे शोध का विषय नहीं है। फिर भी इसका सैद्धांतिक ज्ञान रोगों के समीक्षात्मक अनुशीलन के लिए जरूरी हैं। इसलिए इस विषय पर संक्षिप्त चर्चा जरूरी है। रोगों की प्रकृति के ज्ञान में सबसे पहले यह पता करते हैं कि रोग कफ-वात-पित्त इनमें से किन-किन तत्त्वों के कारण हुआ है। इन तत्त्वों का रोगी के शरीर के साथ व्यवहार क्या है ?

रोग का प्रकोप एवं तीव्रता

रोगों के हो जाने के बाद की स्थिति तथा होने की सम्भावित स्थिति की पहचान और उनके परिणाम का आकलन चिकित्सा ज्योतिष का महत्त्वपूर्ण अंग है। रोगों के प्रकोप के बारे में ज्योतिषी जब किसी जातक की कुण्डली का अध्ययन करता है तो उसे पता चल जाता है कि कब-कब किस-किस रोग का प्रकोप होने वाला है। रोग के प्रकोप के बाद उसकी तीव्रता मुख्यरूप से गोचर से पता चलती है। इस आकलन को तात्कालिक आकलन कह सकते हैं। कुण्डली के समग्र अध्ययन में जातक के कर्म और कर्मज का आकलन एवं कारक ग्रहों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए रोग की तीव्रता का अनुमान लगाया जाता है। रोग के प्रकोप के लिए विशेषरूप से विंशोत्तरी तथा योगिनी दशा, अंतरदशा और प्रत्यंतर्दशादि का विचार किया जाता है। वैसे तो किसी भी एक दशा पद्धति में न केवल, रोग उसके बारे में सभी जानकारियाँ मिल जातीं हैं। लेकिन बेहतर है कि हम इसकी पुष्टि दूसरी दशाओं में भी कर लें। इस हेतु विंशोत्तरी के साथ योगिनी दशा को देखा जाता है। जब हमें दुःसाध्य बीमारियों के बारे में अध्ययन करना होता है तो वर्ग कुण्डलियों का अध्ययन भी जरूरी है। खर द्रेष्कॉण (22 वां द्रेष्कॉण) तथा खर नवांश (64वां नवांश) को रोगों के लिए विशेष देखना चाहिए। इन में स्थित ग्रह उनकी दशाएँ-अन्तर्दशाएं शरीर के लिए बड़े घात देने में सक्षम होती हैं। इसी तरह से त्रिक भाव (6,8,12) तथा राहु-केतु को भी दुःसाद्य रोग के प्रकोप और भयानक तीव्रता देने में सक्षम माना जाता है। इनकी दशाओं और अन्तर्दशाओं में रोग का प्रकोप अचानक और अनियन्त्रित तीव्रता के साथ होता है।

रोग के उपचार

रोगों के उपचार चिकित्सा ज्योतिष से सीधा सम्बन्ध नहीं रखते हैं। उपचार के लिए रोग निदान की स्वीकृत पद्धतियाँ जैसे आयुर्वेद, एलोपैथ, होम्योपैथ तथा प्राकृतिक चिकित्सा आदि हैं। आयुर्वेद में रोगों के

उपचार हेतु ज्योतिष की सहायता ली जाती रही है। जैसे रोगों के ज्योतिष तत्त्वों का ज्ञान करके उपलब्ध दवाओं में से सटीक दवा का चयन, उचित मुहुर्त पर इलाज आरम्भ करने एवं दवा खाने से जल्दी स्वस्थ हो सकते हैं। शल्य क्रिया करनी है तो उसमें भी ज्योतिष के सहयोग से सही मुहूर्त प्राप्त करके सफल शल्य क्रिया एवं जल्दी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

आजकल कुछ एलोपैथिक डॉक्टर भी ज्योतिष में रुचि रखते हैं, वे विशेषरूप से शल्य क्रिया के मुहुर्त निकलवाते हैं। इनके द्वारा की गयी शल्य क्रियाओं में सफलता के प्रतिशत दूसरों से ज्यादा हैं। यह भी शोध का एक विषय हो सकता है। कुछ एलोपैथिक के बहुत ही प्रतिष्ठित डॉक्टर ज्योतिष शास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन करके इसका उपयोग चिकित्सा में सफलता से कर रहे हैं। जैसे एलोपैथिक पद्धति के चिकित्सक डॉ. के.एस चरक एफ.आर.सी.एस ने न केवल ज्योतिष का अध्ययन किया बल्कि वे चिकित्सा ज्योतिष पर कई किताबें भी लिख चुके हैं। उनकी मान्यता है कि - Astrology can help (the medical man) in two way . Firstly when adverse planetary influences indicate the occurance of ailment at any future date, the medical science has understandably has no clue about it.

Secondly, it can sometimes incidcate whether or not surgical intervention is going to help and if so when. In addition it is possible that a sound astrologer may be able to point to a diseased organ or region when the medical man is finding it difficulty to locate the site of illness.[5]

यहाँ पर डॉ. चरक के कथन को संक्षिप्त में समझें तो वे कहते हैं कि ज्योतिष शास्त्र के सहयोग से चिकित्सा करने पर रोगियों को दो तरह से लाभ प्राप्त हो सकता है। प्रथम ज्योतिषि चिकित्सा जगत् के लोगों को बता सकता है कि कब रोग होने वाला है जो चिकित्सा जगत् के लोगों को नहीं पता चलता। दूसरा ज्योतिष के माध्यम यह बताया जा सकता है शल्य चिकित्सा से कोई लाभ होगा की नहीं। इसके अलावा कई बार चिकित्सक को यह पता ही नहीं चलता कि रोग क्या है और किस अंग में है। यह भी ज्योतिष के माध्यम से पता चल सकता। डॉ. चरक ने यह अनुभूत सत्य उजागर किया है।

रोगों के प्रकार

रोग कम से कम दो प्रकार के तो हो ही सकते हैं - एक जन्मजात रोग तथा दूसरे जन्म के बाद के रोग। जन्मजात रोग भी कई प्रकार के हो सकते हैं और जन्म के बाद के रोग भी कई प्रकार के होते हैं। जिनको संक्रमण और गैरसंक्रमण, आकस्मिक एवं पूर्व जानकारीवाले, दुर्घटना जनित रोग, साध्य और असाध्य रोग। समय के अनुसार रोगों की साध्यता और दुःसाध्यता बदलती रहती है। समाज जैसे-जैसे विकास करता है, उसमें शास्त्रों का विकास भी निहित होता है। शास्त्र अपने विकासक्रम में आने वाली चुनौतियों पर विजय प्राप्त करते हुए आगे बढ़ते हैं। रोगों के सन्दर्भ में तो यह और भी प्रासंगिक है। जो रोग पहले दुःसाध्य थे, धीरे-धीरे साध्य होते गए। जैसे तपेदिक पहले दुःसाध्य था, अब साध्य है। यहीं पर एक और बात निकल कर आती है कि पुराने रोग तो साध्य होते जा रहे हैं, लेकिन उनकी जगह नए-नए दुःसाध्य रोग आते जा रहे हैं।

इस शोधपत्र में हमारे वर्तमान समय में जो रोग असाध्य हैं उनपर ही चर्चा की गयी है। पूरा प्रयास किया गया है कि यह शोध दु:साध्य रोगों के समीक्षात्मक अनुशीलन में सबसे नवीन सूचनाओं शोधों एवं उपलब्धियों को दर्ज करे। इन दिनों अख़बार में एक खबर आयी थी कि कर्क रोग का उपचार अब अंग्रेजी दवा से संभव है। हो सकता है कि प्रयोगशालाओं से निकली यह खबर कुछ दिनों में आम जीवन में सत्य हो जाए और कर्क रोग दु:साध्य न रह जाए। यह एक सतत प्रक्रिया है। जिससे मनुष्य जीवन का संघर्ष बना रहता है। इस स्थिति से निपटने में ज्योतिष शास्त्र की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है।

ज्योतिष शास्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ *प्रश्नमार्ग* [6] में रोगों को मुख्यरूप से सहज रोग (inherent or congenital diseases) तथा आगंतुक रोग (incidental diseases) दो भागों में बांटा गया है।

सहज रोग को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है -

1 शारीरिक रोग - अपंगता, अंधापन, कूबड़ या शरीर में विकृति पैदा करनेवाले रोग।

2 मानसिक रोग - पागलपन, हताशा-निराशा, आपराधिक और आत्महंतात्मक गतिविधियों के रोगी, आदतन नशेड़ी और चोर।

आगन्तुक रोगों को भी दो विभागों में बाँट सकते हैं -

1 दृश्य रोग - जादू-टोना, भूत लगना या इस तरह के रोग। इनमें भी शारीरिक एवं मानसिक रोग होते हैं।

2 अदृश्य रोग - इसमें ऐसे रोग आते हैं जो पूर्व जन्म के कर्मों के फल हों जैसे कालसर्प योग मंगल दोष, विषकन्या योग और विभिन्न प्रकार के ऋण। ये रोग भी शारीरिक एवं मानसिक होते हैं।

सहज रोगों के कारण पिछले जन्म के पाप या तो जातक के या उसके पूर्वजों के होते हैं। इसी तरह से आयुर्वेद में भी रोगोत्पत्ति के दो कारण माने गए हैं - 1. कर्म प्रकोप तथा 2. दोष प्रकोप [7] आचार्य चरक ने दोषों के प्रकोप एवं उनके परिणामस्वरूप जन्म लेनेवाले रोगों के 3 कारण माने हैं- 1. प्रज्ञापराध, 2. असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग तथा 3. काल संप्राप्ति।

बुद्धि से उचित रूप में ज्ञान का न होना तथा मन का विषम या अनुचित कर्म में प्रवृत्त होना प्रज्ञापराध कहलाता है। बुद्धि, धृति एवं स्मृति के भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य जो भी अनुचित कार्य करता है, उन्हें प्रज्ञापराध कहते हैं। इन्द्रियों के इन्द्रियार्थों के साथ अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग को असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग कहते हैं। [8] कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा एवं नासिका इन पाँच इंद्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध ये पाँच अर्थ होते हैं। उक्त पाँचो इंद्रियों में से किसी भी इंद्रिय का अपने विषय के साथ अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग, उस इन्द्रिय के अंगों में विकार उत्पन्न कर देता है। जैसे अत्यधिक तेज रोशनी में रहने के बाद अत्यन्त कम रोशनी में जाएँ तो हमें कुछ भी नहीं दिखाई देता है। यह देखने की शक्ति को क्षीण कर देता है। इसी तरह से कठोर, भीषण तथा अप्रिय शब्दों के सुनने से शरीर में व्याधि उत्पन्न हो जाती है। काल को अपने गुणों के साथ अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग को काल सम्प्रति कहते हैं। सर्दी, गर्मी बरसात जैसे गुणों वाले मौसम या ऋतुओं को काल कहते हैं। [9] यद्यपि ऋतुएं छः होतीं हैं। उनमें हर दो ऋतुओं में एक जैसे गुण होते हैं, इसलिए तीन ही मौसम को माना गया है। अब बरसात में इतनी बरसात हो जाए कि सब तरफ जल प्रलय हो जाए या बरसात ही न हो या फिर ऐसे समय में हो जब

उसकी जरूरत ही न हो तो इसे वर्षा ऋतु का अतियोग, अयोग या मिथ्यायोग कहेंगे। इस असन्तुलन के कारण विभिन्न रोग होते हैं। उनको काल सम्प्रति से उपजे रोग कहेंगे।

रोगों के भेद का वर्णन कई अन्य आधार पर किया जा सकता है। यहाँ पर साध्यता के आधार पर किए गए विभाजन से साध्य और दु:साध्य रोगों को समझने का प्रयास करेंगे और आगे के अध्यायों में उनको परीक्षित करेंगे।

साध्य रोग

सामान्य अर्थों में देखें तो जिन रोगों को साधा जा सकता है, जिनका इलाज किया जा सकता है, उनको साध्य रोग कहते हैं। साध्य रोग सामान्यतः कम अवधि के लिए होते हैं। इनके कारक ग्रह बुध, चंद्र, मंगल, सूर्य आदि होते हैं। इन रोगों से मृत्यु की सम्भावना बहुत ही कम होती है। इन रोगों के इलाज के तरीके आधुनिक और प्राचीन चिकित्सा पद्धितियों ने खोज लिया है। ज्यादातर मौसमी रोग, आकस्मिक रोग, इसी श्रेणी के होते हैं। उदाहरण के लिए - सिर दर्द, समान्य बुखार, शरीर दर्द, जलन, सूजन, बलगम, दस्त, सर्दी-जुकाम, जल जनित मौसमी बिमारियाँ, अपच, उलटी, चोट, सामान्य दुर्घटना, चेचक, हड्डी टूटना, खुजली, टायफाइड, त्वचा रोग, पीलिया, रक्ताल्पता, वात और कफ की सामान्य बीमारी, पथरी, प्रोस्टेट तथा कब्ज आदि साध्य रोगों की श्रेणी में आते हैं। साध्य रोगों के आरम्भ में जातकालंकार, भावप्रकाश, जातकतत्त्व प्रकीर्णतत्त्व, दैवज्ञाभरण, बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् तथा जातकपारिजात के अनुसार बननेवाले योगों में से कुछ योग यहाँ पर दिए जा रहे हैं :

1 रोगारम्भ के समय लग्नेश या चंद्र शुभ ग्रहों के प्रभाव में हों।

2 रोगारम्भ के समय लग्नेश या चंद्र केन्द्र या त्रिकोण या उच्च के या मित्र या स्वयं की राशि में स्थित हों।

3 रोगारम्भ के समय केन्द्र या त्रिकोण में शुभ ग्रह हों।

4 रोगारम्भ के समय लग्नेश या चंद्र बलवान् हो।

5 रोगारम्भ के समय लग्नेश चर राशि में तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो।

रोग ठीक होने का योग होने पर तथा मृत्यु योग न होने पर रोगारम्भ के समय के नक्षत्र के द्वारा रोग की समाप्ति का आकलन किया जा सकता है -

नक्षत्रानुसार रोगों की अवधि[10]

क्र	**रोगारम्भ**	**समाप्ति काल**	क्र	**रोगारम्भ**	**समाप्ति काल**
1	अश्विनी	1,9 या 25 दिन तक	15	विशाखा	8,10,20 या 30 दिन तक
2	भरणी	11,21 या 30 दिन, कभी-कभी मृत्युदायक	16	अनुराधा	6,10 या 28 दिन तक
3	कृत्तिका	9,10 या 21 दिन तक	17	चित्रा	8,11 या 15 दिन तक
4	रोहिणी	3,7,9 या 10 दिन तक	18	ज्येष्ठा	15,21 या 30 दिन तक
5	मृगशिरा	3,5 या 9 दिन तक	19	मूल	9,15 या 20 दिन तक
6	आर्द्रा	10 या 1 मास तक कभी-कभी मृत्युदायक	20	पूर्वाषाढ़ा	15-20 दिन तक या 2, 3 या 6 मास तक, रोगों की पुनरावृत्ति संभवहै।

7	पुनर्वसु	7 या 9 दिन तक	21	उत्तराषाढ़ा	20 या 45 दिन
8	पुष्य	7 दिन तक	22	श्रवण	3,6,10 या 25 दिन
9	अश्लेषा	9,20 या 30 दिन	23	धनिष्ठा	13 दिन/सप्ताह/पक्ष
10	मघा	20,30 या 45 दिन	24	शतभिषा	3,10,21या40 दिन
11	पू.फा.	8,15 या 30 दिन	25	पू.भा.	2/10 दिन,2/3 माह
12	उ.फा.	7,15 या 27 दिन	26	उ.भा.	7,10 या 45 दिन
13	हस्त	7,8,9 या 15 दिन तक	27	रेवती	10,28 या 48 दिन
14	स्वाती	1,2,5 या 10 मास तक			

इस तरह से साध्य रोगों का आकलन किया जा सकता है और ग्रहों एवं नक्षत्रों के अनुसार उनके ठीक होने का समय पता चल सकता है।

दुःसाध्य रोग

वे रोग जिनका आधुनिक एवं प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में उपचार उपलब्ध नहीं है। इस तरह की बीमारियों में मृत्यु होती है दुःसाध्य रोग दो प्रकार के होते हैं-

1. मृत्युदायक

2.आजीवन चलनेवाले।

ज्योतिषशास्त्र में अष्टम् एवं तृतीय भाव आयु के कारक भाव हैं।[11] अतः इन भावों में स्थित या इनको देखनेवाले ग्रहों के अनुसार आयु समाप्त करने वाले या मृत्युदायक रोग का निर्णय किया जाता है हम जानते हैं कि फलित ज्योतिष में कुण्डली के षष्ठ भाव को रोग भाव कहते हैं। अतः इस भाव में स्थित ग्रह, इस भाव को देखनेवाले तथा इस भाव के स्वामी ग्रह से आजीवन चलनेवाले रोगों का निर्णय होता है। [12] इसके अलावा भी कुण्डलियों में मृत्यु दायक रोगों के बहुत सारे योग बनते हैं। इस तरह के रोगों के उदय के बाद इनके विकास की गति को थोड़ा बहुत कम किया जा सकता है। अन्यथा इन रोगों पर कोई नियन्त्रण नहीं होता है। यह रोग सामान्यतः लम्बी अवधि के होते हैं। इनके कारक ग्रह सामान्यरूप से शनि,राहु,केतु,गुरु,शुक्र होते हैं। इनको दीर्घावधि रोगों के जनक की तरह देखा जाता है। ये रोग मृत्यु देते हैं। इनके उपचार की कोई सफल पद्धति नहीं होती है। इन रोगों की सूची में निरंतर बदलाव होती रहती है। जैसे-जैसे चिकित्सा पद्धति इनका इलाज खोजते जाता है, ये रोग से साध्य बनते जाते हैं। वर्तमान समय के कुछ दुःसाध्य रोगों की सूची बनाएं तो उनकी सूची निम्न हो सकती है - मतिभ्रम, अतिनशा, मधुमेह, शुक्राणु कम होना, संभोग सम्बन्धित बीमारी, अस्थमा, समलैंगिकता, नपुंसकता, आघात, अपंगता, लंगड़ापन, मूढ़मति, पागलपन, लकवा, कर्क रोग, हृदय रोग, मिर्गी, कुष्ठ रोग तथा एड्स आदि। इन रोगों के उदय काल का विचार निम्न बिन्दुओं में कर सकते हैं -

1 जन्म कुण्डली में अष्टमेश, गुलिक, शनि, 22वाँ द्रेष्कॉण या उसके स्वामी जिस राशि में हों उस राशि में शनि गोचर कर रहा हो।

2 जन्म लग्न के द्रेष्कॉण का स्वामी, अष्टमेश या 22वें द्रेष्कॉण का स्वामी, जिस राशि में हों उस राशि में गुरु गोचर कर रहा हो।

3 कुण्डली या सूर्य के द्वादशांश की राशि, अष्टमेश के नवांश की राशि या लग्नेश के नवांश की राशि में रोगारम्भ के समय सूर्य एवं गुरु हों।

4 रोगारम्भ काल के चन्द्रमा का गोचर अष्टमेश या सूर्य की राशि में हो।

5 रोगारम्भ के समय रोगी के चन्द्रमा की राशि से अष्टम,त्रिकोण तथा नक्षत्रेश की राशि में गुलिक हो।

6 रोगारम्भ के समय रोगी का नक्षत्रेश अष्टम स्थान में हो।

ऊपर दिए गए योग - दैवज्ञाभरण प्र.16 श्लो.57-58, 60 एवं 67, फलदीपिका - अ.17 श्लो.2-5 एवं 19, प्रश्नमार्ग अ. 9 श्लोक 25, 13 आदि से लिए गए हैं। इस तरह से और भी ग्रन्थों से दुःसाध्य रोगों के योग संग्रह किए जा सकते हैं। इस के अलावा दोष भी होते हैं जिनके होने से रोगी जल्दी ठीक नहीं होता है। उनमें से कुछ को नीचे सूचीबद्ध किया जा रहा है :

1 रोगारम्भकालीन चंद्रमा एवं लग्न निर्बल होना।

2 रोगारम्भकालीन चंद्रमा एवं लग्न पर पाप ग्रहों की दृष्टि-युति।

3 रोगारम्भ के समय में लग्नेश एवं राशीश अस्त, पापाक्रान्त, निर्बल, अस्त, त्रिक स्थान पर, मृत्युसंज्ञक अंशों में हों।

4 केन्द्र या त्रिकोण या अष्टम में कोई पाप ग्रह हो।

विभिन्न प्रकार बालारिष्ट एवं अरिष्टभंग योग

कुण्डलियों में जिसप्रकार से राजयोग और शुभ योग होते हैं। उसी प्रकार से अरिष्ट करनेवाले ग्रहों से अरिष्ट योग बनते हैं। इन योगों को केन्द्र में रख कर ज्योतिष के विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में अल्पायु योग, बालारिष्ट, अरिष्ट और अरिष्टभंग योगों की चर्चा की गयी है। हमने यह भी देखा है कि सबसे ज्यादा अरिष्ट चंद्र के माध्यम से होता है। इस सन्दर्भ में एक श्लोक प्रासंगिक है -

योगे स्थानं गतिवति बलिनश्चन्द्रे स्वं वा तनुगृहमथवा॥
पापदृष्टे बलवति मरणं वर्षस्यान्तः किल मुनिदितम् ।13।।[13] (भ्रमर विलसित)

अर्थात् जिन योगों में मृत्यु का समय नहीं बताया गया है उन योगों में मृत्यु के निर्णय का प्रकार बताया जा रहा है। अरिष्ट योग कारक ग्रहों में जो सर्वाधिक बलवान् ग्रह उसकी अधिष्ठित राशि में जब चन्द्रमा आए तब मरण होगा। अथवा जन्म लग्न राशि में चन्द्रमा आने पर अथवा जन्मकालीन चन्द्रमा की राशि में पुनः चन्द्रमा के गोचर पर मृत्यु होती है इसको एक वर्ष के अन्दर देखना चाहिए। पूरे वर्ष में चन्द्रमा के 13 भगण होते हैं। इस कारण बलवान् अनिष्टकारक ग्रह की, जन्म लग्न की, जन्म चन्द्र की इन तीन राशियों में आने पर 13X3=39 कालावधियों पर विचार किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

इस शोधपत्र से हमें ज्योतिषशास्त्र में रोग विचार का ज्ञान मिलता है। हमें रोग निर्णय के प्रमुख तत्त्व जैसे रोगों के उत्पत्ति का समय, उनका प्रकोप एवं तीव्रता तथा उपचार का परिचय मिलता है। रोगों के प्रकार में प्रमुखरूप से साध्य और असाध्य रोगों के स्वभाव को समझने में इस अध्याय से सहायता मिलती है। बालारिष्ट एवं अरिष्टभंग योगों का अध्ययन करते हुए रोग विचार के लिए व्यापक आयाम निर्मित हुए। सबसे पहला निष्कर्ष यह मिला कि रोग कर्मज हैं। हमारे बुरे कर्मों के परिणाम स्वरूप रोग होते हैं। शरीर में अनिष्ट अवांछित संक्रमण, अत्यधिक परिश्रम एवं प्रकृति के विरुद्ध आचरण के कारण

रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों की तीव्रता का आकलन कुण्डली के भाव-राशि-ग्रह-दशा-नक्षत्र के माध्यम से किया जा सकता है। वर्ग कुण्डलियों के अध्ययन से प्राप्त रोग विवरणों को प्रमाणित किया जा सकता है। रोग उदय का समय प्रमुखरूप से गोचर एवं दशाओं से पता चलता है। रोग प्रकोप की तीव्रता ग्रह एवं राशियों के बला-बल से पता चलता है। लग्न हमें जातक के जीवन ऊर्जा से परिचित करवाता है। यह ऊर्जा ही हमें रोग के उपचार और परिणति की दिशा बताती है। इस शोधपत्र में दिए गए ज्योतिषीय घटकों का गहन विवेचन करके रोगों के पृष्ठभूमि का निर्धारण किया जा सकता है जो हमें दुःसाध्य रोगों के समीक्षात्मक अनुशीलन में सहयोग करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 लेखक एच. एल कोरनेल- द इनसाक्लोपीडिया आफ चिकित्सा ज्योतिष –पृ.सं. 502
2. टीकाकार-पं. पद्मनाभ शर्मा-वृहत्पाराशरहोराशास्त्रम् पृ.सं.75
3. ले. जगन्नाथ भसीन - ज्योतिष और रोग -पृ.सं.118
4. ले. जगन्नाथ भसीन - ज्योतिष और रोग -पृ.सं.119
5. ले. प्रो. एन.ई मुत्तुस्वामीमेडिकल एस्ट्रोलॉजी कंसेप्टस एण्ड केश स्टडीज -पृ.सं.Xii
6. ले. प्रो. एन.ई मुत्तुस्वामी मेडिकल एस्ट्रोलॉजी कम्बीनेशन एण्ड रेमेडियल मेजर्स-पृ.सं.1
7. चरक संहिता - उत्तरतंत्र अ. 40।
8. चरक संहिता- सूत्रस्थानम् 1।54 तथा 11।37
9. चरक संहिता- सूत्रस्थानम् 1।54 तथा 11।37
10. ले. डॉ. शुकदेव चतुर्वेदीज्योतिष शास्त्र में रोग विचार -पृ.सं. - 14
11. प्रश्नमार्ग - अ.1 शलोक - 4
12. ले. डॉ. शुकदेव चतुर्वेदीज्योतिष शास्त्र में रोग विचार -पृ.सं. - 194
13. व्याख्याकार - डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र - बृहज्जातकम्-पृ. सं. 164